

समकालीन भारतीय संवैधानिक व्यवहार में राष्ट्रपति का विवेक, मंत्रिपरिषद और लोकतांत्रिक संतुलन

DOI: <https://doi.org/10.63345/gjiirp.v1.i2.301>

सीता राम पंडित

शोधार्थी

राजनीति विज्ञान विभाग

महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, शिवनगर, पोखरा, पोड़ी
गढ़वाल - 246169, उत्तराखण्ड भारत

डॉ. पी पी राणा

शोध निर्देशक

राजनीति विज्ञान विभाग

महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, शिवनगर, पोखरा, पोड़ी
गढ़वाल - 246169, उत्तराखण्ड भारत<http://www.gjiirp.org/> || Vol. 1 No. 2 (2025): June Issue

Date of Submission: 07-05-2025

Date of Acceptance: 20-05-2025

Date of Publication: 09-06-2025

सारांश—भारतीय संविधान ने राष्ट्रपति को संघ की कार्यपालिका शक्ति का औपचारिक प्रमुख बनाया है (अनुच्छेद 53)। अनुच्छेद 74(1) के अनुसार वे मंत्रिपरिषद की सलाह से काम करते हैं। 42वें संशोधन (1976) ने इस सलाह को बाध्यकारी बनाया। 44वें संशोधन (1978) ने राष्ट्रपति को सलाह एक बार पुनर्विचार के लिए लौटाने का अधिकार दिया। इस व्यवस्था के बीच राष्ट्रपति के विवेक का क्षेत्र संकरा है, पर पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ। यह शोध-पत्र जाँचता है कि समकालीन संवैधानिक व्यवहार में राष्ट्रपति का विवेक, मंत्रिपरिषद का प्रभुत्व, संवैधानिक परंपराएँ और न्यायिक समीक्षा लोकतांत्रिक संतुलन को किस प्रकार प्रभावित करते हैं। अध्ययन में मिश्रित पद्धति अपनाई गई है। इसमें तीन भाग हैं: संवैधानिक प्रावधानों और प्रमुख निर्णयों का सैद्धांतिक विश्लेषण, 1950-2025 के बीच राष्ट्रपति के विवेक से जुड़े 46 प्रसंगों का विषय-वस्तु विश्लेषण, और 280 विशेषज्ञ उत्तरदाताओं का संरचित सर्वेक्षण। बहुचर प्रतिगमन विश्लेषण के अनुसार संवैधानिक परंपराओं की दृढ़ता ($\beta = 0.34$), न्यायिक समीक्षा की प्रभावशीलता ($\beta = 0.27$) और राष्ट्रपति के विवेक की वैधता ($\beta = 0.21$) लोकतांत्रिक संतुलन को सकारात्मक रूप से प्रभावित करती हैं। मंत्रिपरिषद का अत्यधिक प्रभुत्व ($\beta =$

-0.18) इस पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। मॉडल लोकतांत्रिक संतुलन के 46% विचलन की व्याख्या करता है ($R^2 = 0.46$)। निष्कर्ष है कि राष्ट्रपति का सीमित किंतु सुविचारित विवेक, सुदृढ़ परंपराओं और न्यायिक निगरानी के साथ मिलकर, संसदीय लोकतंत्र में "नियंत्रण और संतुलन" की अंतिम सुरक्षा-रेखा का काम करता है।

मुख्य शब्द—राष्ट्रपति का विवेक, अनुच्छेद 74, मंत्रिपरिषद, संवैधानिक परंपराएँ, न्यायिक समीक्षा, लोकतांत्रिक संतुलन, संसदीय शासन

प्रस्तावना

भारतीय संविधान निर्माताओं ने ब्रिटिश वेस्टमिंस्टर मॉडल को आधार बनाकर संसदीय शासन-प्रणाली अपनाई। इसमें राष्ट्रपति राज्य के प्रमुख हैं और वास्तविक शासन-शक्ति प्रधानमंत्री के नेतृत्व वाली मंत्रिपरिषद के पास है। संविधान सभा में डॉ. भीमराव अंबेडकर ने कहा था कि राष्ट्रपति की स्थिति ब्रिटिश सम्राट जैसी है। वे राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करते हैं, शासन नहीं करते। फिर भी संविधान में कई स्थितियाँ हैं जहाँ राष्ट्रपति

को निर्णय लेने की स्वतंत्रता मिलती है। उदाहरण के लिए, स्पष्ट बहुमत न होने पर प्रधानमंत्री की नियुक्ति, विश्वास खो चुकी सरकार की सलाह पर लोकसभा का विघटन, अनुच्छेद 74(1) के परंतुक के अंतर्गत सलाह को पुनर्विचार हेतु लौटाना, अनुच्छेद 111 के अंतर्गत विधेयक पर स्वीकृति रोकना या लौटाना, और अनुच्छेद 78 के अंतर्गत प्रधानमंत्री से जानकारी माँगना।

1989 से 2014 के बीच गठबंधन राजनीति का दौर रहा और त्रिशंकु लोकसभाएँ बार-बार बनीं। इस दौर में राष्ट्रपति का विवेक व्यावहारिक रूप से अधिक महत्वपूर्ण हो गया। 2014 के बाद एकल दल के स्पष्ट बहुमत वाली सरकारें लौटीं। इसके साथ यह प्रश्न फिर उठा कि मंत्रिपरिषद् के प्रभुत्व वाले ढाँचे में राष्ट्रपति का पद केवल औपचारिक रह गया है या वह अब भी संवैधानिक संरक्षक की भूमिका निभा सकता है। राज्यपालों द्वारा विधेयकों पर अनिश्चितकाल तक निर्णय न लेने से जुड़े विवाद और उस पर सर्वोच्च न्यायालय के हाल के हस्तक्षेप ने इस बहस को और प्रासंगिक बना दिया है। यह शोध-पत्र इन्हीं प्रश्नों का सैद्धांतिक और आनुभविक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

साहित्य समीक्षा

ग्रैनविल ऑस्टिन (Austin, 1966) ने संविधान सभा की बहसों का गहन अध्ययन किया। उनके अनुसार निर्माताओं ने जानबूझकर राष्ट्रपति को नाममात्र का प्रमुख रखा, ताकि कार्यपालिका के दो केंद्र न बनें। उन्होंने यह भी दिखाया कि राष्ट्रपति की "अंतरात्मा के संरक्षक" वाली भूमिका लिखित प्रावधानों पर नहीं, परंपराओं पर टिकी थी। अपनी बाद की कृति में ऑस्टिन (Austin, 1999) ने 1950 से 1985 तक के संवैधानिक व्यवहार का विश्लेषण किया। इसमें आपातकाल के दौरान राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद द्वारा बिना मंत्रिमंडल की औपचारिक बैठक के आपातकाल की घोषणा पर हस्ताक्षर करने का प्रसंग शामिल है। ऑस्टिन के अनुसार 42वें और 44वें संशोधन इसी अनुभव की प्रतिक्रिया थे।

न्यायिक व्याख्या में राम जवाया कपूर बनाम पंजाब राज्य (1955) पहला महत्वपूर्ण निर्णय था। इसमें सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि भारत में ब्रिटिश प्रकार का संसदीय शासन है और वास्तविक कार्यपालिका मंत्रिपरिषद् है। यू.एन.आर. राव बनाम इंदिरा गांधी (1971) में न्यायालय ने कहा कि लोकसभा भंग होने के बाद भी राष्ट्रपति बिना मंत्रिपरिषद् के काम नहीं कर सकते। इस तरह अनुच्छेद 74 को अनिवार्य माना गया। शमशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य (1974) इस विषय का सबसे प्रभावशाली निर्णय है। सात न्यायाधीशों की पीठ ने कहा कि राष्ट्रपति और राज्यपाल केवल असाधारण परिस्थितियों में ही अपने विवेक से काम कर सकते हैं। न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर ने अपनी सहमति-राय में ऐसी परिस्थितियों को पहचाना, जैसे सरकार गठन के समय बहुमत वाले दल की पहचान करना।

एस.आर. बोम्बई बनाम भारत संघ (1994) में नौ न्यायाधीशों की पीठ ने अनुच्छेद 356 के प्रयोग को न्यायिक समीक्षा के दायरे में लाया।

न्यायालय ने राष्ट्रपति की "संतुष्टि" को वस्तुनिष्ठ आधारों पर परखने योग्य माना और बहुमत का परीक्षण सदन में करने को अनिवार्य बताया। बाद के अध्येताओं ने इस निर्णय को संघवाद और लोकतांत्रिक संतुलन की रक्षा में मील का पत्थर माना है। रामेश्वर प्रसाद बनाम भारत संघ (2006) में बिहार विधानसभा के विघटन को असंवैधानिक ठहराया गया। न्यायालय ने कहा कि राष्ट्रपति को भेजी गई राज्यपाल की रिपोर्ट दुर्भावनापूर्ण या अप्रासंगिक आधारों पर नहीं हो सकती। बी.पी. सिंघल बनाम भारत संघ (2010) में "राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत" पद पर रहने के सिद्धांत की सीमाएँ तय हुईं। न्यायालय ने कहा कि केवल राजनीतिक असहमति के आधार पर राज्यपालों को नहीं हटाया जा सकता। नबाम रेबिया बनाम उपाध्यक्ष (2016) में पाँच न्यायाधीशों की पीठ ने राज्यपाल के विवेक को सीमित किया। निर्णय के अनुसार राज्यपाल अपनी मर्जी से विधानसभा का सत्र बुलाने या उसका कार्यक्रम तय करने का अधिकार नहीं रखते।

क्षमादान की शक्ति (अनुच्छेद 72) पर भी न्यायिक विमर्श विकसित हुआ है। केहर सिंह बनाम भारत संघ (1989) में न्यायालय ने कहा कि यह शक्ति मंत्रिपरिषद् की सलाह पर प्रयुक्त होती है, पर सीमित न्यायिक समीक्षा के अधीन है। एपुरु सुधाकर बनाम आंध्र प्रदेश सरकार (2006) में स्पष्ट किया गया कि दुर्भावना, अप्रासंगिक विचार या मनमानी के आधार पर क्षमादान का निर्णय निरस्त किया जा सकता है। शत्रुघ्न चौहान बनाम भारत संघ (2014) में दया याचिकाओं के निपटारे में अनुचित विलंब को मृत्युदंड के लघुकरण का आधार माना गया।

संस्थागत समीक्षाओं में सरकारिया आयोग (1988) का विशेष स्थान है। आयोग ने अनुच्छेद 356 के संयमित प्रयोग और राज्यपालों की निष्पक्ष नियुक्ति की सिफारिश की। राष्ट्रीय संविधान कार्यकरण समीक्षा आयोग (NCRWC, 2002) ने त्रिशंकु सदन की स्थिति में प्रधानमंत्री के चयन के लिए स्पष्ट परंपराएँ विकसित करने की सिफारिश की। पुंछी आयोग (2010) ने विधेयकों पर राज्यपाल के निर्णय के लिए समय-सीमा तय करने का सुझाव दिया।

विद्वत्तापूर्ण साहित्य में एच.एम. सीरवाई (Seervai, 1991-1996) ने राष्ट्रपति को विशुद्ध संवैधानिक प्रमुख माना। उनके अनुसार विवेक का कोई भी विस्तार संसदीय उत्तरदायित्व के सिद्धांत को कमजोर करेगा। डी.डी. बसु (Basu, 2015) ने अधिक संतुलित दृष्टि अपनाई। उनके अनुसार अनुच्छेद 78 के अंतर्गत जानकारी माँगने का अधिकार और पुनर्विचार का अधिकार राष्ट्रपति को "परामर्श देने, प्रोत्साहित करने और चेतावनी देने" की बेजहॉट-प्रेरित भूमिका देते हैं। ए.जी. नूरानी (Noorani, 2000) ने राष्ट्रपति जैल सिंह द्वारा भारतीय डाकघर (संशोधन) विधेयक 1986 पर स्वीकृति न देने (पॉकेट वीटो) और राष्ट्रपति के.आर. नारायणन द्वारा 1997 में उत्तर प्रदेश तथा 1998 में बिहार में राष्ट्रपति शासन की सिफारिश लौटाने का विश्लेषण किया। उन्होंने इन्हें विवेक के वैध और लोकतंत्र-रक्षक प्रयोग माना। जेम्स मैनर (Manor, 1994) के संपादित ग्रंथ ने प्रधानमंत्री पद के बदलते स्वरूप का अध्ययन किया। इसके अनुसार प्रधानमंत्री की शक्ति का केंद्रीकरण राष्ट्रपति-प्रधानमंत्री संबंधों को सीधे प्रभावित करता है। चौधरी, खोसला और मेहता (Choudhry, Khosla & Mehta, 2016) द्वारा संपादित

ऑक्सफोर्ड हैंडबुक और माधव खोसला (Khosla, 2012) ने संवैधानिक परंपराओं और न्यायिक समीक्षा के बीच के संबंध को भारतीय संवैधानिकता की केंद्रीय विशेषता बताया। हाल में तमिलनाडु राज्य बनाम तमिलनाडु के राज्यपाल (2025) में सर्वोच्च न्यायालय ने विधेयकों पर अनिश्चितकालीन निष्क्रियता को असंवैधानिक माना। इससे संवैधानिक प्रमुखों के विवेक की सीमाओं पर नई बहस शुरू हुई।

शोध अंतराल

उपलब्ध साहित्य मुख्यतः सैद्धांतिक और न्यायिक विश्लेषण पर आधारित है। राष्ट्रपति के विवेक, मंत्रिपरिषद के प्रभुत्व, परंपराओं और न्यायिक समीक्षा के परस्पर प्रभाव का विशेषज्ञ धारणाओं पर आधारित मात्रात्मक अध्ययन बहुत कम है। 1950 से 2025 तक के विवेक-संबंधी प्रसंगों का कालखंडवार व्यवस्थित वर्गीकरण भी दुर्लभ है। यह अध्ययन इसी अंतराल को भरने का प्रयास है।

शोध उद्देश्य

इस अध्ययन के उद्देश्य हैं:

- संवैधानिक व्यवहार में राष्ट्रपति के विवेक के क्षेत्रों की पहचान करना और उनका कालखंडवार विश्लेषण करना।
- विशेषज्ञों की धारणा में राष्ट्रपति के विवेक की वैधता, मंत्रिपरिषद के प्रभुत्व, संवैधानिक परंपराओं की दृढ़ता और न्यायिक समीक्षा की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना।
- इन चारों कारकों का लोकतांत्रिक संतुलन पर सापेक्ष प्रभाव मापना।
- विभिन्न व्यावसायिक समूहों की धारणाओं में अंतर का परीक्षण करना।

शोध परिकल्पनाएँ

- **H1:** संवैधानिक परंपराओं की दृढ़ता का लोकतांत्रिक संतुलन पर सार्थक सकारात्मक प्रभाव है।
- **H2:** न्यायिक समीक्षा की प्रभावशीलता का लोकतांत्रिक संतुलन पर सार्थक सकारात्मक प्रभाव है।
- **H3:** राष्ट्रपति के विवेक की वैधता का लोकतांत्रिक संतुलन पर सार्थक सकारात्मक प्रभाव है।
- **H4:** मंत्रिपरिषद के अत्यधिक प्रभुत्व का लोकतांत्रिक संतुलन पर सार्थक नकारात्मक प्रभाव है।
- **H5:** राष्ट्रपति के विवेक की वैधता के प्रति धारणा व्यावसायिक समूहों में सार्थक रूप से भिन्न है।

शोध पद्धति

शोध अभिकल्प: अध्ययन में अभिसारी मिश्रित पद्धति (convergent mixed-methods design) अपनाई गई। गुणात्मक भाग में

संविधान के अनुच्छेद 52-78, 85, 111, 123, 356 और 72, संविधान सभा की बहसों, संशोधनों तथा चौदह प्रमुख न्यायिक निर्णयों का सैद्धांतिक विश्लेषण किया गया। मात्रात्मक भाग में दो घटक हैं: विषय-वस्तु विश्लेषण और विशेषज्ञ सर्वेक्षण।

विषय-वस्तु विश्लेषण: 1950-2025 के बीच राष्ट्रपति के विवेक से जुड़े 46 प्रसंगों की पहचान की गई। स्रोत थे: राष्ट्रपति सचिवालय की विज्ञप्तियाँ, लोकसभा वाद-विवाद, राजपत्र अधिसूचनाएँ और समकालीन अभिलेख। प्रसंगों को तीन कालखंडों (1950-1976, 1977-1998, 1999-2025) और पाँच श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया। दो स्वतंत्र कोडर्स के बीच अंतर-कोडर विश्वसनीयता कोहेन कप्पा (κ) = 0.87 रही।

सर्वेक्षण: उद्देश्यपूर्ण स्तरीकृत प्रतिचयन (purposive stratified sampling) से 280 विशेषज्ञ चुने गए। इनमें विधि-शिक्षक, अधिवक्ता, राजनीति विज्ञान के शिक्षक, सेवारत या सेवानिवृत्त प्रशासनिक अधिकारी और शोधार्थी शामिल थे। 340 प्रश्नावलियाँ वितरित की गईं और 280 पूर्ण प्रश्नावलियाँ प्राप्त हुईं (प्रत्युत्तर दर 82.4%)। प्रश्नावली में पाँच-बिंदु लिक्र्ट पैमाने पर पाँच निर्मितियों के 24 कथन थे। इनमें से चार स्वतंत्र चर थे: राष्ट्रपति के विवेक की वैधता (PD), मंत्रिपरिषद का प्रभुत्व (CMD), संवैधानिक परंपराओं की दृढ़ता (CS) और न्यायिक समीक्षा की प्रभावशीलता (JR)। पाँचवाँ, लोकतांत्रिक संतुलन (DB), आश्रित चर था। तीन संवैधानिक विशेषज्ञों ने विषय-वैधता की पुष्टि की। 30 उत्तरदाताओं पर पूर्व-परीक्षण किया गया।



सांख्यिकीय विश्लेषण: आँकड़ों का विश्लेषण SPSS 26.0 में किया गया। विश्लेषण में वर्णनात्मक सांख्यिकी, क्रोनबैक अल्फा, पियर्सन सहसंबंध, बहुचर रैखिक प्रतिगमन और एकमार्गी ANOVA शामिल

थे। बहुसंख्यता की जाँच के लिए VIF का प्रयोग किया गया। सभी VIF मान 1.21 से 1.43 के बीच रहे, यानी बहुसंख्यता की कोई समस्या नहीं थी।

तालिका 1: उत्तरदाताओं का व्यावसायिक और क्षेत्रीय वितरण (N = 280)

श्रेणी	उपश्रेणी	संख्या	प्रतिशत
व्यवसाय	विधि-शिक्षक	72	25.7
	अधिवक्ता (उच्च/सर्वोच्च न्यायालय)	64	22.9
	राजनीति विज्ञान शिक्षक	58	20.7
	प्रशासनिक अधिकारी	46	16.4
	शोधार्थी	40	14.3
क्षेत्र	उत्तर भारत	84	30.0
	दक्षिण भारत	68	24.3
	पश्चिम भारत	56	20.0
	पूर्व भारत	52	18.6
	पूर्वोत्तर भारत	20	7.1
योग		280	100.0

परिणाम

विषय-वस्तु विश्लेषण के परिणाम: तालिका 2 से पता चलता है कि विवेक-संबंधी प्रसंग सबसे अधिक 1977-1998 के कालखंड में हुए (21 प्रसंग, 45.7%)। यह अवधि राजनीतिक अस्थिरता, गठबंधन सरकारों और त्रिशंकु लोकसभाओं की थी। 1999-2025 के कालखंड में 14 प्रसंग (30.4%) दर्ज हुए। इनमें से अधिकांश 2014 से पहले के हैं।

तालिका 2: राष्ट्रपति के विवेक-संबंधी प्रसंगों का कालखंडवार वितरण (1950-2025)

प्रसंग की श्रेणी	1950-1976	1977-1998	1999-2025	योग
त्रिशंकु/अस्पष्ट स्थिति में प्रधानमंत्री की नियुक्ति	1	7	2	10
लोकसभा का समयपूर्व विघटन	2	5	3	10
सलाह/विधेयक पुनर्विचार हेतु लौटाना या स्वीकृति रोकना	1	3	3	7
अनुच्छेद 356 से जुड़े निर्णय पर असहमति/विलंब	3	4	2	9
दया याचिकाओं पर विलंब या विशिष्ट निर्णय	4	2	4	10
योग	11	21	14	46

वर्णनात्मक सांख्यिकी और विश्वसनीयता: तालिका 3 के अनुसार सबसे ऊँचा माध्य मंत्रिपरिषद के प्रभुत्व का है ($M = 3.91$)। इसका अर्थ है कि विशेषज्ञ मानते हैं कि व्यवहार में शासन की शक्ति निर्णायक रूप से मंत्रिपरिषद के पास केंद्रित है। संवैधानिक परंपराओं की दृढ़ता का माध्य सबसे कम है ($M = 3.18$), जो परंपराओं के क्षरण के प्रति चिंता दर्शाता है। सभी निर्मितियों के क्रोनबैक अल्फा मान 0.79 से 0.88 के बीच हैं, यानी सभी की आंतरिक संगति अच्छी है।

तालिका 3: निर्मितियों की वर्णनात्मक सांख्यिकी और विश्वसनीयता (N = 280)

निर्मिति	कथनों की संख्या	माध्य (M)	मानक विचलन (SD)	क्रोनबैक α
राष्ट्रपति के विवेक की वैधता (PD)	5	3.42	0.78	0.84
मंत्रिपरिषद का प्रभुत्व (CMD)	5	3.91	0.69	0.81
संवैधानिक परंपराओं की दृढ़ता (CS)	4	3.18	0.84	0.79
न्यायिक समीक्षा की प्रभावशीलता (JR)	5	3.67	0.73	0.86
लोकतांत्रिक संतुलन (DB)	5	3.36	0.81	0.88

सहसंबंध विश्लेषण: तालिका 4 में लोकतांत्रिक संतुलन का सबसे प्रबल सहसंबंध संवैधानिक परंपराओं से है ($r = 0.52$)। इसके बाद न्यायिक समीक्षा ($r = 0.45$) और राष्ट्रपति के विवेक की वैधता ($r = 0.38$) हैं। मंत्रिपरिषद के प्रभुत्व का लोकतांत्रिक संतुलन से नकारात्मक सहसंबंध है ($r = -0.29$)।

तालिका 4: पियर्सन सहसंबंध आव्यूह

चर	PD	CMD	CS	JR	DB
PD	1				
CMD	-0.31**	1			
CS	0.36**	-0.24**	1		
JR	0.22**	-0.12*	0.33**	1	
DB	0.38**	-0.29**	0.52**	0.45**	1

* $p < 0.05$; ** $p < 0.01$

प्रतिगमन विश्लेषण: तालिका 5 के अनुसार चारों स्वतंत्र चर मिलकर लोकतांत्रिक संतुलन के 46% विचलन की व्याख्या करते हैं ($R^2 = 0.46$, समायोजित $R^2 = 0.452$, $F(4, 275) = 58.56$, $p < 0.001$)। सबसे प्रबल पूर्वानुमानक संवैधानिक परंपराओं की दृढ़ता है ($\beta = 0.34$, $p < 0.001$)। इसके बाद न्यायिक समीक्षा की प्रभावशीलता ($\beta = 0.27$, $p < 0.001$) और राष्ट्रपति के विवेक की वैधता ($\beta = 0.21$, $p < 0.001$) आती हैं। मंत्रिपरिषद् के प्रभुत्व का प्रभाव नकारात्मक और सार्थक है ($\beta = -0.18$, $p = 0.001$)। इस प्रकार H1, H2, H3 और H4 स्वीकृत होती हैं।

तालिका 5: लोकतांत्रिक संतुलन पर बहुचर प्रतिगमन के परिणाम

पूर्वानुमानक	B	मानक त्रुटि	β	t	p	VI F
(स्थिरांक)	1.12	0.31	—	3.61	<0.001	—
PD	0.22	0.05	0.21	4.40	<0.001	1.28
CMD	-0.21	0.06	-0.18	-3.50	0.001	1.21
CS	0.33	0.05	0.34	6.60	<0.001	1.43
JR	0.30	0.05	0.27	6.00	<0.001	1.24

$R = 0.678$; $R^2 = 0.46$; समायोजित $R^2 = 0.452$; $F(4, 275) = 58.56$; $p < 0.001$

व्यावसायिक समूहों में अंतर: एकमार्गी ANOVA के अनुसार राष्ट्रपति के विवेक की वैधता के प्रति धारणा व्यावसायिक समूहों में सार्थक रूप से भिन्न है ($F(4, 275) = 4.87$, $p = 0.001$, $\eta^2 = 0.066$)। इसलिए H5 स्वीकृत होती है। अधिवक्ताओं का माध्य सबसे ऊँचा है और प्रशासनिक अधिकारियों का सबसे कम। टुकी पोस्ट-हॉक परीक्षण में अधिवक्ताओं और प्रशासनिक अधिकारियों के बीच का अंतर सार्थक पाया गया ($p = 0.001$)।

तालिका 6: व्यावसायिक समूहवार राष्ट्रपति के विवेक की वैधता (PD) के माध्य

व्यावसायिक समूह	n	माध्य	मानक विचलन
विधि-शिक्षक	72	3.48	0.74
अधिवक्ता	64	3.61	0.71
राजनीति विज्ञान शिक्षक	58	3.39	0.79
प्रशासनिक अधिकारी	46	3.12	0.83

शोधार्थी	40	3.44	0.77
कुल	280	3.42	0.78

विवेचना

परिणाम दिखाते हैं कि भारतीय संसदीय लोकतंत्र में संतुलन किसी एक संस्था से नहीं बनता। यह परंपराओं, न्यायिक निगरानी और राष्ट्रपति के संयमित विवेक के सम्मिलित प्रभाव से बनता है। संवैधानिक परंपराओं का सबसे प्रबल प्रभाव ऑस्टिन (1966) के इस तर्क की पुष्टि करता है कि भारतीय संविधान का वास्तविक संचालन लिखित प्रावधानों से अधिक अलिखित परंपराओं पर निर्भर है। परंपराओं की दृढ़ता का निम्न माध्य (3.18) एक चेतावनी है। विशेषज्ञ मानते हैं कि परंपराएँ अपेक्षित रूप से सुदृढ़ नहीं हैं, जबकि लोकतांत्रिक संतुलन पर उनका प्रभाव सबसे अधिक है। NCRWC (2002) की सिफारिश, कि त्रिशंकु सदन में प्रधानमंत्री चयन की परंपराओं को संहिताबद्ध किया जाए, इस संदर्भ में और महत्वपूर्ण हो जाती है।



न्यायिक समीक्षा का सार्थक प्रभाव बोम्मई (1994), रामेश्वर प्रसाद (2006) और नबाम रेबिया (2016) जैसे निर्णयों की व्यावहारिक प्रभावशीलता दर्शाता है। ये निर्णय संवैधानिक प्रमुखों के विवेक को "वस्तुनिष्ठ मानकों" से बाँधते हैं। विषय-वस्तु विश्लेषण भी यही दिखाता है। 1994 के बाद अनुच्छेद 356 से जुड़े विवादित प्रसंगों की संख्या घटी है (1999-2025 में केवल 2)। इसे न्यायिक निगरानी के निवारक प्रभाव से जोड़ा जा सकता है।

राष्ट्रपति के विवेक की वैधता का सकारात्मक प्रभाव ($\beta = 0.21$) शमशेर सिंह (1974) के उस दृष्टिकोण से मेल खाता है जिसमें असाधारण परिस्थितियों में विवेक को मान्यता दी गई है। नूरानी (2000) ने राष्ट्रपति नारायणन द्वारा राष्ट्रपति शासन की सिफारिशें लौटाने और राष्ट्रपति कलाम द्वारा 2006 में लाभ के पद से जुड़ा विधेयक पुनर्विचार हेतु लौटाने का विश्लेषण किया है। ये प्रसंग दिखाते हैं कि 44वें संशोधन द्वारा दिया

गया पुनर्विचार का अधिकार सरकार के विरुद्ध टकराव का साधन नहीं है। यह "संवैधानिक विराम" का साधन है, जो जल्दबाजी वाले निर्णयों पर पुनर्विचार का अवसर देता है।

मंत्रिपरिषद् के प्रभुत्व का नकारात्मक प्रभाव सूक्ष्म व्याख्या माँगता है। संसदीय शासन में मंत्रिपरिषद् का प्रधान होना स्वाभाविक और वांछनीय है। समस्या तब उत्पन्न होती है जब यह प्रभुत्व इतना बढ़ जाए कि राष्ट्रपति की परामर्श देने, प्रोत्साहित करने और चेतावनी देने की भूमिका भी निष्प्रभावी हो जाए। मैनेर (1994) ने प्रधानमंत्री कार्यालय में शक्ति के केंद्रीकरण की जिस प्रवृत्ति को पहचाना था, सर्वेक्षण के परिणाम उसी दिशा में संकेत करते हैं। व्यावसायिक समूहों में अंतर भी अर्थपूर्ण है। अधिवक्ता न्यायिक और अधिकार-आधारित दृष्टि से देखते हैं, इसलिए विवेक को अधिक वैध मानते हैं। प्रशासनिक अधिकारी कार्यपालिका की एकरूपता और निर्णय की गति को प्राथमिकता देते हैं। यह अंतर संवैधानिक विमर्श में विभिन्न संस्थागत दृष्टिकोणों के सह-अस्तित्व को दर्शाता है।

निष्कर्ष

यह अध्ययन निष्कर्ष निकालता है कि समकालीन भारतीय संवैधानिक व्यवहार में राष्ट्रपति का विवेक औपचारिक रूप से सीमित है, पर संस्थागत रूप से अर्थहीन नहीं। 42वें और 44वें संशोधनों ने मिलकर ऐसा ढाँचा बनाया है जिसमें मंत्रिपरिषद् की सलाह अंततः बाध्यकारी है। साथ ही राष्ट्रपति को एक बार पुनर्विचार का अवसर देकर विवेकशील संयम का स्थान भी सुरक्षित रखा गया है। आनुभविक परिणाम बताते हैं कि लोकतांत्रिक संतुलन के लिए सबसे आवश्यक है संवैधानिक परंपराओं का सुदृढ़ीकरण। इसके बाद न्यायिक समीक्षा की निरंतरता और राष्ट्रपति के विवेक का पारदर्शी तथा संयमित प्रयोग आते हैं। मंत्रिपरिषद् का अत्यधिक केंद्रीकरण इस संतुलन के लिए चुनौती है।

नीतिगत दृष्टि से अध्ययन कुछ सुझाव देता है:

- त्रिशंकु सदन की स्थिति में सरकार गठन की परंपराओं का संहिताकरण।
- अनुच्छेद 111 और 200 के अंतर्गत विधेयकों पर निर्णय के लिए उचित समय-सीमा का निर्धारण, जिसकी दिशा में तमिलनाडु राज्य बनाम तमिलनाडु के राज्यपाल (2025) का निर्णय महत्वपूर्ण कदम है।
- दया याचिकाओं के निपटारे के लिए पारदर्शी प्रक्रिया।
- अनुच्छेद 78 के अंतर्गत प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति के बीच नियमित और संस्थागत संवाद।

सीमाएँ और भावी शोध

अध्ययन का सर्वेक्षण उद्देश्यपूर्ण प्रतिचयन पर आधारित है, इसलिए परिणामों का सामान्यीकरण सावधानी से करना चाहिए। पूर्वोत्तर भारत का प्रतिनिधित्व अपेक्षाकृत कम (7.1%) है। विषय-वस्तु विश्लेषण

सार्वजनिक अभिलेखों पर आधारित है। राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के बीच गोपनीय पत्राचार उपलब्ध न होने से कुछ प्रसंग छूट सकते हैं। भावी शोध राज्यपालों के विवेक का तुलनात्मक अध्ययन कर सकता है, अन्य वेस्टमिस्टर लोकतंत्रों (ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा) से तुलना कर सकता है, और संरचनात्मक समीकरण मॉडलिंग (SEM) द्वारा मध्यस्थ प्रभावों की जाँच कर सकता है।

संदर्भ सूची

1. Austin, G. (1966). *The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation*. Oxford: Clarendon Press.
2. Austin, G. (1999). *Working a Democratic Constitution: The Indian Experience*. New Delhi: Oxford University Press.
3. Basu, D. D. (2015). *Introduction to the Constitution of India* (22nd ed.). Gurgaon: LexisNexis.
4. Choudhry, S., Khosla, M., & Mehta, P. B. (Eds.). (2016). *The Oxford Handbook of the Indian Constitution*. Oxford: Oxford University Press.
5. Constituent Assembly of India. (1948). *Constituent Assembly Debates* (Vol. VII). New Delhi: Lok Sabha Secretariat.
6. Government of India. (1988). *Report of the Commission on Centre-State Relations* (Sarkaria Commission). New Delhi: Government of India.
7. Government of India. (2002). *Report of the National Commission to Review the Working of the Constitution*. New Delhi: Ministry of Law, Justice and Company Affairs.
8. Government of India. (2010). *Report of the Commission on Centre-State Relations* (Punchhi Commission). New Delhi: Ministry of Home Affairs.
9. Khosla, M. (2012). *The Indian Constitution*. New Delhi: Oxford University Press.
10. Manor, J. (Ed.). (1994). *Nehru to the Nineties: The Changing Office of Prime Minister in India*. London: Hurst & Company.
11. Noorani, A. G. (2000). *Constitutional Questions in India: The President, Parliament and the States*. New Delhi: Oxford University Press.
12. Seervai, H. M. (1991-1996). *Constitutional Law of India: A Critical Commentary* (4th ed., Vols. 1-3). Bombay: N. M. Tripathi.
13. B. P. Singhal v. Union of India, (2010) 6 SCC 331.
14. Epuru Sudhakar v. Government of Andhra Pradesh, (2006) 8 SCC 161.
15. Kehar Singh v. Union of India, (1989) 1 SCC 204.



16. Nabam Rebia and Bamang Felix v. Deputy Speaker, Arunachal Pradesh Legislative Assembly, (2016) 8 SCC 1.
17. Ram Jawaya Kapur v. State of Punjab, AIR 1955 SC 549.
18. Rameshwar Prasad v. Union of India, (2006) 2 SCC 1.
19. S. R. Bommai v. Union of India, (1994) 3 SCC 1.
20. Shamsher Singh v. State of Punjab, (1974) 2 SCC 831.
21. Shatrughan Chauhan v. Union of India, (2014) 3 SCC 1.
22. State of Tamil Nadu v. Governor of Tamil Nadu, Writ Petition (Civil) No. 1239 of 2023, Supreme Court of India, judgment dated 8 April 2025.
23. U. N. R. Rao v. Indira Gandhi, (1971) 2 SCC 63.

